कहानी

हरे कोट के पीछे

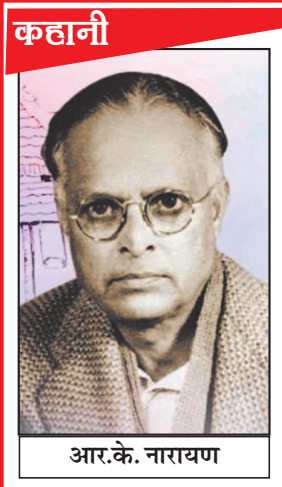

आर.के. नारायण

तेज धूप और नीले आसमान के नीचे हरा कोट पहने वह आदमी आराम से खड़ा था. भीड़ बहुत थी, फिर भी वह सबको साफ नजर आ रहा था. गाँव के लोग कमीज पहने और पगड़ियाँ बाँधे, शहर के कोट और टोपियाँ लगाये, नंगे बदन भिखारी और रंग-बिरंगी साड़ियों में औरतें छोटी-छोटी दुकानों और सँकरे रास्तों में एक-दूसरे से टकराते चल रहे थे, फिर भी हरा कोट सबसे अलग दिखाई दे रहा था. बाजार का का शोर-शराबा और धींगामस्ती, सब कुछ वहाँ थी, लोग दुकानदारों से मोलभाव करते, एक-दूसरे से मिलते-जुलते और नमस्ते-राम-राम करते, इस सबके ऊपर बाइबिल का प्रचार करने वाले की बुलंद आवाज, और जब वह साँस लेने के लिए ठहरता तो दूसरे कोने से स्वास्थ्य-संबंधी सूचनाएँ देने वाला लाउडस्पीकर मलेरिया और टी. बी. से बचने के उपाय बताने लगता. इस सबके बावजूद हरा कोट मानो सबको निमंत्रण-सा देता प्रतीत हो रहा था.

राजू यह न्यौता नकार नहीं सका. यह उसके स्वभाव में ही नहीं था कि इतने आकर्षक व्यक्ति को वह महत्व न दे. वह भीड़ से बिकुल अलग न होता, और यह भी जाहिर न होने देता कि लोगों में वह बहुत घुल-मिल रहा है. वह जहाँ भी होता, डरता रहता कि पुलिस उसे पहचान न ले, आज वह ज्यादातर नंगे बदन, सिर्फ एक जाँघिया पहने और पगड़ी बाँधे, जिससे उसका सिर पूरी तरह ढंक-सा गया था, कि लोग गाँव का किसान समझे, घूम रहा था.

एक दुकान के बगल में केले के छिलकों के एक ढेर पर बैठा वह भीड़ को देख रहा था. भीड़ को वह हमेशा बड़े ध्यान से देखता था. दरअसल यही उसका पेशा भी था. आमतौर से देखने पर वह घूमने-फिरने वाला साधारण आदमी दिखता था और उसमें इतनी ही ताकत भी थी कि ध्यान से देखकर सही आदमी की जेब में हाथ डाल दे. देखा जाये तो यह एक जुआ ही था. कभी उसे जेब में कुछ भी न मिलता और हाथ सही-सलामत बाहर आ जाय तो वह अपने को भाग्यवान् ही समझता था. कभी एक फाउंटेन पेन ही उसके हाथ लगता और कमेटी के पीछे बैठा खरीददार इसके लिए चार आने से ज्यादा नहीं देता था और ऐसी चीजों से उसके पकड़े जाने का डर भी बना रहता था. राजू ने फैसला किया कि अब वह फाउन्टेन पेनों को हाथ भी नहीं लगायेगा, अगर उसे कोई प्लेट में रखकर भेंट भी करेगा तो भी नहीं लेगा-इनसे बहुत परेशानी होती थी, इनसे स्याही टपकती रहती थी और इनका ज्यादा उपयोग भी न था, खरीददार को भी बिलकुल पसंद न थे. घड़ियाँ भी इसी श्रेणी में आती थीं.

राजू को सबसे ज्यादा पसंद था-बड़ा-सा पर्स, जिसका पेट खूब फूला हुआ हो. अगर उसे पर्स होने का पता चलता तो वह उसे बड़ी सफाई से निकालने की कोशिश करता. उसमें रखे पैसे निकालकर पर्स को कहीं फेंक देता और खुश होकर घर जाता, कि आज उसने अच्छा काम किया है. इसके बाद वह अपना मुँह पानी से धोता और सामान्य नागरिक बनकर फिर सड़कों पर निकल आता. बच्चों के लिए मिठाई, किताबें और स्लेटें खरीदता, और कभी-कभी बीवी के लिए भी कुरती का कपड़ा खरीद लेता. बीवी के बारे में उसका दिमाग हमेशा हलका नहीं रहता था. जब वह ज्यादा पैसा लेकर घर पहुँचता तो एक बड़ा हिस्सा लिफाफे में रखकर पहले कहीं छिपा देता, तब घर में घुसता. नहीं तो बीवी बहुत सारे सवाल पूछकर परेशान करती.

राजू छिलकों के ढेर से उठा और हरे कोट के पीछे लग गया. वह उससे तीन कदम पीछे चलने लगा. यह फासला उसे ठीक लगता था.

राजू बड़े धीरज से इन्तजार करता रहा. एक दुकान पर खड़ा चटाइयों का मोलभाव करता रहा. बगल में हरा कोट एक ठेले वाले से नारियल कटवाकर आराम से पी रहा था. लगता था, वह यहाँ से हटेगा ही नहीं. भीतर का सारा दूध पीकर उसने धीरे-धीरे उसे कटवाकर गूदा निकलवाया और आराम से खाने लगा.

गूदा खाने के बाद हरे कोट ने अपना बटुआ निकाला और नारियल की कीमत पर उससे बहस करने में लग गया. उसकी आवाज भारी, आरे की तरह खरखराती थी, जो राजू को अच्छी नहीं लगी. वह चीते की गुर्राहट की तरह थी- लेकिन वह शिकारी ही क्या? जो गुर्राहट से डरकर अपने शिकार को हाथ से निकल जाने दे! पैसे के लिए वह जिस तरह नारियल वाले से लड़-झगड़ रहा था, यह भी राजू को अच्छा नहीं लगा-उसने सोचा कि यह घटिया और कंजूस आदमी है, पैसे का इसे बहुत लालच है. जब ऐसे लोगों का बटुआ गायब हो जाये तो ये बड़ा तूफान खड़ा कर देते हैं.

आखिरकार हरा कोट आगे बढ़ा. वह एक गुब्बारे की दुकान पर रुका. बहुत मोलभाव करके एक गुब्बारा खरीदा. यह भी राजू को पसंद नहीं आया. वह कह रहा था, गुब्बारा ऐसे बच्चे के लिए है जिसकी माँ नहीं है. मैंने उससे वादा किया है कि गुब्बारा जरूर लाऊँगा. अगर मेरे घर पहुंचने से पहले यह रास्ते में फट जाता है या खो जाता है, तो बच्चा रात भर रोता रहेगा और मुझे बहुत तकलीफ होगी. राजू को एक स्टाल के पास अपना मौका मिल गया, जहाँ अखबार पढ़ते गाँधीजी की मोम से बनी एक प्रतिमा को देखने के लिए लोग उमड़े पड़ रहे थे.

पंद्रह मिनट बाद राजू पर्स का मुआयना कर रहा था. सबसे अलग एक टूटी दीवाल के पीछे उसने इसे खोला, इसमें बीस रुपये के नोट और दस रुपये के सिक्के थे. कुछ फुटकर पैसे भी थे. पैसे उसने यह सोचकर जाँघिये की जेब में रख लिये कि भिखारियों को दे देगा. यह सोचकर उसे बहुत अच्छा लगा. तीस रुपये उसने अपनी पगड़ी के सिरे पर गाँठ बनाकर बाँध लिये और उसे दुबारा फिर ठीक से पहन लिया. इन पैसों से महीने के बाकी दिन आराम से गुजर जायेंगे. पंद्रह दिन तक वह भले आदमी की जिन्दगी गुजारेगा और बीवी-बच्चों को सिनेमा दिखाने भी ले जायेगा.

अब खाली बटुआ उसके हाथ में था. अब उसका काम यही रह गया था कि उसे किसी कुएं में फेंक दे, उसने कुएं के भीतर झाँका, नीचे थोड़ा-सा पानी था. हो सकता है, बटुआ पानी पर तैरने लगे, और तैरता हुआ पर्स बड़ी परेशानियाँ पैदा कर सकता है.

उसने बटुआ खोला कि उसमें कंकड़-पत्थर भरकर कुएं में डाल दे जिससे वह पानी की सतह पर तैरने की जगह नीचे जाकर तली में डूब जाये. तभी उसे बटुए में गुब्बारा दिखाई दिया, जो तह करके रखा हुआ था. उसे याद आया कि गुब्बारा हरे कोट ने अपने बच्चे के लिए खरीदा था और बड़ी देर तक इसके लिए मोलभाव करता रहा था. उसने सोचा, इसे पर्स में रखने की क्या जरूरत थी? उसे क्रोध आ गया और कल्पना में वह देखने लगा कि दरवाजे में खड़े गुब्बारे का इन्तजार कर रहे बिन माँ के बच्चे, पर पिता को जब जेब में हाथ डालने पर पस नहीं मिलता, उस पर अपना गुस्सा निकालने लगता है. इस कल्पना से वह सहम गया.

माँ हीन बच्चे की स्थिति का विचार करके राजू जैसे रोने को हो आया-बच्चे को वहाँ सांत्वना देने वाला भी कोई न होगा. अगर उसने रोना शुरू कर दिया तो हो सकता है यह गुंडा उसे पीटने लगे. इसकी शक्ल से यह हरगिज नहीं लगता कि यह बच्चों की भाषा जानता होगा. राजू ने सोचा कि बच्चा उसके दूसरे बेटे के बराबर होगा और उसका मन दया से भर उठा. उसने फैसला किया कि माँ हीन बच्चे को यह गुब्बारा मिलना ही चाहिए. लेकिन कैसे?

उसने दीवाल के पीछे से झाँककर देखा, भीड़ काफी दूर नजर आ रही थी. गुब्बारा वापस तो किया नहीं जा सकता. यही किया जा सकता है कि उसे पर्स में फिर रख दिया जाये और फिर पर्स को चुपचाप हरे कोट की जेब में डाल दिया जाये.

हरे कोट वाला बाइबिल का प्रचार करने वाले के सामने लगी भीड़ को देख रहा था. वक्ता जोर-शोर से भाषण दे रहा था, उसके सामने गोला बनाये लोग सवाल पूछ रहे थे, तुम्हारा ईश्वर कहाँ रहता है? उत्तर सुनने के लिए लोग चुप हो गये. राजू हरे कोट के पास पहुंच गया. गुब्बारा (केवल) पर्स में था और पर्स उसकी हथेलियों में. अब इसे वह जेब में डाल देगा. हाथ हिलाते ही राजू को अपनी गलती समझ में आ गयी.

हरे कोट ने हाथ पकड़ लिया और चिल्लाया, पाकेटमार! सवाल पूछने वाले ईश्वर की समस्या भूल गये और राजू की तरफ घूमे. जो खुद चिल्लाने लगा था, मुझे छोड़ो. हरे कोट ने झपटकर उसे जोर का चाँटा मारा. इस चोट से राजू जैसे अंधा ही होने लगा. एक क्षण के लिए वह भूल गया कि वह कहाँ है! और यह भी कि वह है कौन? आँखों के आगे से अँधेरा जब कुछ कम हुआ और धुंध कुछ छटी तो उसने आँखें खोली और देखा कि हरा कोट उसे ही नहीं, सारी दुनिया को घेरे खड़ा है. वह दूसरा वार करने के लिए तैयार हो रहा था. राजू बहुत डर गया. कहने लगा, मैं. मैं तो आपका पर्स वापस कर रहा था. हरे कोट ने दाँत पीसे और बाँह की हड़ियाँ तोड़ दीं. लोग हँसने लगे और कुछ ने खुद भी उसे थप्पड़ मारे.

राजू मजिस्ट्रेट के सामने भी यही कहता रहा कि मैं तो पर्स वापस रख रहा था. लोग हँस रहे थे. फिर पुलिस की दुनिया का यह आम मजाक बन गया. राजू की बीवी जेल में उससे मिलने आयी तो रोकर कहने लगी, तुमने हम सबको शर्मिंदा किया है.

राजू गुस्से से बोला, क्यों किया है? मैं तो पर्स उसकी जेब में रख रहा था. अठारह महीने की सजा काटकर जब वह वापस लौटा तो सोचता रहा कि उसे अब क्या करना चाहिए. उसने खुद से कहा, अगर अब मैं फिर कभी किसी की जेब काटूंगा तो वापस हरगिज नहीं रखूँगा. अब उसे विश्वास हो गया था कि ईश्वर ने उस जैसे लोगों को एकतरफा सफाई ही प्रदान की है. ये अँगुलियाँ निकाल तो सकती हैं, वापस नहीं रख सकतीं. (मूल अंग्रेजी से अनुदित)

क्लास by बड़े भाई

कमियां बताने का भी ढंग होता है

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, आपने भी महसूस किया होगा कि वो कभी पसंद नहीं आता जो जब भी मिलता है कमियाँ गिनाने बैठ जाता है. हाँ, हमारी बुद्धि हमें ज़रुर उसे झेलने के लिए यह तर्क देकर तैयार कर लेती है कि इससे आपका बेहतर ही होगा, कमियाँ भी अपनी सुननी चाहिए लेकिन दिल फिर भी भले थोड़ा ही पर अच्छा महसूस नही करता. अगर इस बात पर आपकी हाँ है तो चलिए आगे बढ़ते हैं.

छोटे भाई, आज हम इस पर बात करेंगे कि किसी कि कमियां किसी के सामने कैसे रखें. जिसे वो सुने ,अमल करे और आपसे चिढ़े न..इसके लिए मुझे लगता है दो बातें हमें ध्यान में रखना चाहिए..

पहली बात यह कि आप यह स्वीकार लें कि किसी को भी बुरा सुनना सामान्य रूप से पसंद नही आता लेकिन यदि उसकी कमियों के साथ उसकी अच्छाइयों को भी रखें तो बात बन जाती है. सामने वाला आपकी बताई कमी को भी पूरे सम्मान के साथ स्वीकारता है आत्मसात करता है और इससे उसकी दृष्टि में आपके लिए सुन्दर भाव भी बनता है वो आपसे कतराता नही.

दूसरी बात यह कि किसी की कमी उसे अकेले में बताएं और खूबियाँ तो लोगों के बीच में भी चलेगी. यह आप समझ ही रहे होंगे. हमें आपको भी अपने लिए भी यही उचित लगेगा. हम आप भी नही चाहेंगे कि कोई हमारे साथ ऐसा व्यवहार करे. कहने का तात्पर्य यह कि ध्यान रखें, आपका किसी को उसकी कमियाँ बताना, सलाह की तरह लगे न कि बेइज्जती करने की तरह. कमियाँ बताने और बेइज्जती करने में अंतर समझें. मेरा विचार है छोटे भाई, यह दो बातें ध्यान रखकर यदि हम किसी को कुछ बदलाव के लिए कहेंगे तो पूरी सम्भावना है कि स्वीकारेगा, आपकी मित्रता चाहेगा और भविष्य में वह खुद ही आपसे आपकी राय मांगेगा. बस यही कहना था धन्यवाद..

जिंदगी और मौत : रंगमंच की कठपुतलियां

सुचिता सकुनिया

बाबूमोशाय, जिंदगी और मौत ऊपर वाले के हाथ में है. न उसे आप बदल सकते हैं, न मैं. हम सब तो रंगमंच की कठपुतलियाँ हैं, जिनकी डोर ऊपरवाले की उँगलियों में बँधी है.

यह संवाद केवल फ़िल्मी पंक्ति नहीं, बल्कि जीवन की हकीकत को बयाँ करता है. पिछले कुछ दिनों में घटित घटनाओं ने इसे और भी महसूस करवा दिया.

हम अक्सर कहते हैं कि जो आया है, उसे जाना ही है. लेकिन आज लोग, खासकर युवा वर्ग, असमय मौत की गोद में समा जाते हैं. पिछले पंद्रह दिनों में 30 से 45 वर्ष के कई ऐसे मामले मेरे सामने आए, जहाँ कुछ ही क्षणों में जीवन समाप्त हो गया.

कोई घर का काम कर रहा था, कोई क्रिकेट खेल रहा था, तो कोई डॉक्टर होते हुए भी साथी डॉक्टरों के साथ छुट्टियाँ मना रहा था और जीवन ने उन्हें चंद मिनट भी नहीं दिए. ऐसी घटनाएँ समाज को भीतर तक झकझोर देती हैं.

इन असमय मौतों को लेकर तरह-तरह की चर्चाएँ हो रही हैं. कोई इसे वैक्सीन का प्रभाव बता रहा है तो कोई आज की जीवनशैली और खान-पान को जिम्मेदार ठहरा रहा है. कारणों पर निर्णय देना मेरा उद्देश्य नहीं है, लेकिन इतना कहना पर्याप्त है कि इन घटनाओं ने मन में डर और असहजता अवश्य पैदा की , हालांकि परमात्मा की बहुत-बहुत शुक्रगुजार हूँ कि उन्होंने मेरे अपनों पर अपनी कृपा रखी. पर इन सब घटनाओं ने मुझे जिंदगी के बारे में सोचने को मजबूर कर दिया.

ऐसे समय में आनंद फ़िल्म का एक और संवाद याद आता है— **ज़िंदगी लंबी होनी चाहिए, बड़ी नहीं.**

जब हमें पता है कि कल का कोई भरोसा नहीं, तो क्यों न हम आज को पूरी तरह जिएँ? काम कल भी हो जाएगा, पैसा कल भी कमाया जा सकता है, लेकिन आज का समय और अपनों के साथ बिताए पल लौटकर नहीं आते.

हम महंगे कपड़े, गहने और इच्छाएँ भविष्य के लिए सहेज कर रखते हैं, पर वह भविष्य कभी आता है या नहीं, कोई नहीं जानता. बचपन में देखे गए सपने, अपनी रुचियाँ और अपनी कला—अगर आज नहीं जिएँगे, तो फिर कब जिएँगे? जिम्मेदारियाँ जीवन के अंतिम क्षण तक साथ रहती हैं. ईश्वर ने हर व्यक्ति में कोई न कोई विशेषता दी है. ज़रूरत है उसे पहचानने और जिंदगी के कुछ पल स्वयं के लिए जीने की. यही दृष्टि जीवन को देखने का नज़रिया बदल देती है.

आनंद फ़िल्म का एक और संवाद यही सिखाता है कि हम अक्सर आने वाले दुखों को आज की खुशियों में खींच लाते हैं और उसमें ज़हर घोल देते हैं, क्योंकि हम वर्तमान में नहीं, भविष्य में जीते हैं. इस फिल्म ने हमें जीवन का एक सबसे बड़ा सबक बड़ी ही सूक्ष्मता और खूबसूरती से सिखाया है. और अंत, आनंद की सबसे खूबसूरत पंक्ति से— **जब तक जिंदा हूँ तब तक मारा नहीं, जब मर गया साला मैं ही नहीं तो डर किस बात का?**

कविता

प्रतीक्षा

कृपाली राणा

मंदिरों में जाकर
सुनती हूँ
अनगिनत प्रार्थनाएं
घँटियों से निकलती
उम्मीद की आवाजें

जो पहुंचेंगी वहां
तक
जहां बैठा होगा कोई
उन्हें सुनने वाला

सुनकर उन्हें
तुरंत जुट जाएगा
उन्हें पूरा करने में

बंधते मन्नतों के
धागों में
न जाने कितनी
इच्छाएं बेबस बंधती
होगी
अधूरे सपनों के
साथ

वे अधूरे लोग
जो करते हैं प्रतीक्षा
उन धागों को
खोलने की

कैसा रहता होगा
ईश्वर के लिए
खुद को ईश्वर
साबित करना

गीत

वासंती गीत

प्रदीप नवीन

वासंती बह रही बयार
मौसम पे आ रहा है
प्यार।

1

चहचहाके पंछियों ने
भोर की
दृष्टि फिर खुले गगन
की ओर की,
कुछ नहीं थकान, भरी
दूर तक उड़ान
पल में सारा गगन
लिया निहार।

2

बौराए आम की छांव
में
कोयल पुकारे जैसे
गांव में,
टेसू लाल लाल,
उड़े धूल सा गुलाल
दृश्य आंखों में अपनी
लूं उतार।

3

अलसाए दिन से बात
कर रहे
शाखों के फिर से पात
झर रहे,
प्रकृति सिंगार करे
दुल्हन सा व्यवहार
पड़े तन पे जैसे
फागुनी फुहार।
वासंती...

कविता

अधूरी बातों की चुभन

नीलमणि

ये जो मेरी बात
पूरी होने से पहले ही
काट देते हो नज

बस यहीं
मेरी कई बातें
हमेशा के लिए
अधूरी रह जाती हैं.

शब्द ठहर जाते हैं
कंठ पर
भावनाएँ मुड़ जाती हैं
भीतर कहीं
और मैं मुस्कानों की सिलाई में
अपने दर्द के धागे छिपा लेती हूँ.

मुझे पता है
तुम्हें बोलने की जल्दी है
पर क्या कभी जल्दी
समझने की भी उतनी ही होती है?

कभी सुना है
किसी के भीतर की वह खामोशी
जो हर बार टूटती है—
बात काटे जाने पर?

तुम्हें लगता है
मैं रुक गई
पर सच तो यह है
कि मेरी कई बातें
तुम्हारे बीच में आ जाने से
कभी जन्म ही नहीं ले पातीं.

कहते हो—
कहो न, क्या बात है?
पर मैंने कहना
धीरे-धीरे छोड़ दिया
क्योंकि तुम्हें सुनना
कभी आया ही नहीं.

किसी दिन
अगर सच में सुनना चाहो
तो मत बोलना
बस थोड़ी देर ठहर जाना
शब्दों को पूरा होने देना.
शायद उस दिन
मैं तुम्हें
उन अधूरी बातों का संसार दिखा दूँ—
जो तुमने ही
अधूरा रखा है.

खुद को तोड़ने का साहस

लघुकथाएं

मेघा राठी

मुझसे नहीं होगा अब इतना प्रेशर अब नहीं झेला जा सकता!

मयंक ने झुंझलाकर लैपटॉप और नोटबुक एक तरफ सरकाए और झटके से खड़ा हो गया. कुर्सी पीछे खिसकती हुई तेज़ आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिर पड़ी.

आवाज़ सुनकर उसकी बड़ी बहन गीतिका कमरे में आ गई. क्या हुआ? उसने पूछा. सवाल साधारण था लेकिन वह जानती थी—यह साधारण थकान नहीं, भीतर तक जमा हुआ दबाव है.

दीदी, अब नहीं पढ़ सकता मैं. पहले जे.ई.ई. की तैयारी फिर इंजीनियरिंग और अब कैट. लगता है जैसे जिंदगी सिर्फ़ इम्तिहानों की कतार बन गई है., मयंक ने सिर दोनों हाथों में थाम लिया.

गीतिका ने उसे देखा. यह वही छोटा भाई था जो कभी बड़े सपने आँखों में लिए भागता फिरता था और आज उन्हीं सपनों के बोझ से थक चुका था.

लेकिन एम.बी.ए. तो तू खुद करना चाहता था न? गीतिका ने शांत स्वर में कहा. किसी ने ज़ोर तो नहीं डाला!

मयंक चुप रहा क्योंकि वह जानता था—दबाव बाहर से नहीं था, उसकी अपनी अपेक्षाओं का था. सबसे अच्छा करने की जिद, खुद को साबित करने की भूख, और असफल होने का डर.

गीतिका रसोई में गई. मयंक के लिए हॉट चॉकलेट और अपने लिए नींबू पानी लेकर आई.

कप उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली, तुझे याद है, मुझे पी.सी.ओ.डी. की वजह से कितना वज़न बढ़ गया था?

हाँ दीदी, मयंक ने कहा. पर , अब तो आप बिल्कुल बदल गई हैं. फिट भी हो गईं और मॉडलिंग में भी नाम बना रही हैं.

गीतिका हल्की मुस्कुराई. लेकिन ये सब यूँ ही नहीं हुआ, मयंक. मैंने भी खुद को बदला है. अपनी पसंद का खाना छोड़ा, डाइट अपनाई, सुबह जल्दी उठकर कसरत की—जबकि मैं पहले देर से उठने वालों में थी.

मयंक ध्यान से सुन रहा था.

समझ रहा है? गीतिका बोली. जब बड़ा बदलाव चाहिए होता है, तो पुराने 'खुद' को छोड़ना पड़ता है. अपनी आदतें, अपना आराम, अपने डर ...सब कुछ.

मयंक ने धीमे स्वर में कहा, हां , सही कहा - कुछ पाना हो तो कुछ खोना भी पड़ता है.

गीतिका ने उसके कंधे पर हाथ रखा. ,बिल्कुल. और कभी-कभी वह रुकी, फिर दृढ़ता से बोली , खुद को तोड़ना भी पड़ता है, ताकि खुद को बेहतर बनाया जा सके. डिस्ट्रॉय योर सेल्फ टू बिल्ड अप.

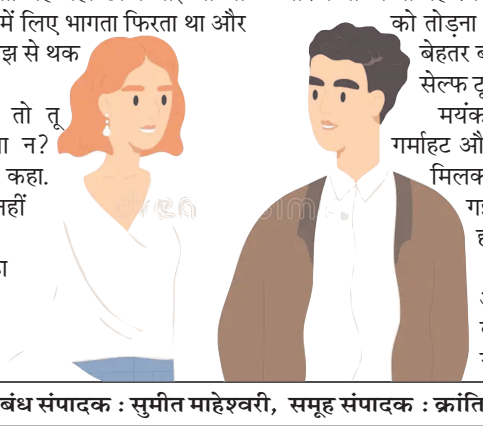

मयंक चुप था मगर चॉकलेट की गर्माहट और बहन के शब्दों की ताक़त मिलकर मयंक के भीतर कुछ जगा गई. थकान अब भी थी, लेकिन हार नहीं.

उसने मुस्कुराकर लैपटॉप अपनी ओर खींचा, गिरी हुई कुर्सी उठाई और फिर से बैठ गया—इस बार डर के साथ नहीं, समझ के साथ.

सनक

अशोक गुजराती

मैं गांव गया तो वहां एक अलग ही दृश्य देखा. एक पागल-सा व्यक्ति गली-गली घूम रहा था. बाल बिखरे-बिखरे, वस्त्र मैले-कुचैले लेकिन चेहरे पर किसी अभिजात्य परिवार का तेज़. बढ़ी हुई- काले-सफ़ेद रेशों की खिचड़ी-सी दाढ़ी के बावजूद. बोलने का लहज़ा बहुत ही शालीन और भाषा भी संतुलित.

मुझ में उसके अजीब व्यक्तित्व ने जिज्ञासा जगाई. मेरे बचपन के दोस्त से मैंने पूछा, 'यार, यह आदमी पढ़ा-लिखा लगता है. क्या तुम जानते हो, कैसे इस दशा में आ पहुंचा?'

दोस्त मुस्कुराया. मतलब उसे भेद पता था. कुरेदने पर उसने उसकी व्यथा-कथा सुनाई...

''ये जनाब अच्छे-ख़ासे थे. नौकरी उनकी औसत थी पर अपने परिवार के प्रति समर्पित थे. उनके एक बेटा और एक बेटी थी. दोनों को बेहद मुश्किल से पेट काट-काट कर उच्च शिक्षा दिलाई. बेटा अमेरिका पहुंच गया. वहीं उसने शादी भी कर ली. बेटी का विवाह एक अप्रवासी भारतीय युवक से हुआ तो वह लंदन जा बसी.

ये रिटायर हुए. थोड़ी-सी पेन्शन थी. उसके सहारे पति-पत्नी का जीवन चलने लगा. दोनों बच्चों से बीच-बीच में मोबाइल के ज़रिए बातचीत हो जाती थी. अचानक इनकी पत्नी की तबीयत बिगड़ी. लंग कैंसर था. बेटा-बेटी को ये समय-समय पर सारी ख़बर देते रहे. वे अपनी व्यस्त जिन्दगी का हवाला देकर आने की बात करते पर आये नहीं.

बुढ़ापे में पत्नी की ज़रूरी देखभाल और अस्पताल का ख़र्च इन्होंने पूरे जी-जान से किया. बच्चों से आर्थिक मदद वैसे भी इन्हें स्वीकार नहीं थी और वे मात्र भेजने का आश्वासन ही देते रहे. पत्नी ने अपने अंतिम वक़्त में इनसे क़सम ले ली- 'मेरी मौत के बारे में उनको बताना भी नहीं और उनसे अब मैं फ़ोन पर बात भी नहीं करूंगी.'

और एक दिन पत्नी इन्हें छोड़ गयी. उन्होंने यह दुखद समाचार बच्चों से छिपा तो लिया किन्तु ज़िन्दगी का यह भीषण अभिशाप वे सह नहीं पाये. उनके दिमाग़ पर असर हो गया.

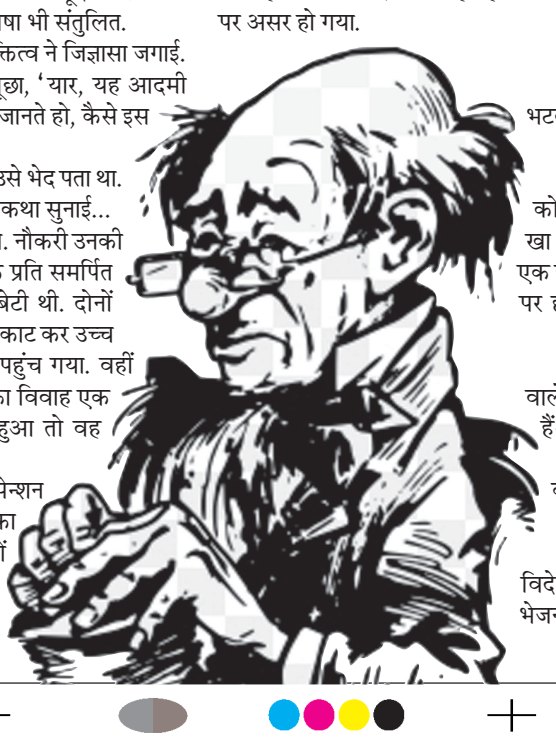

अब वे यहां-वहां भटकते रहते हैं. किसी ने कुछ खाने को दे दिया तो खा लेते हैं. बस एक ही सनक उन पर हमेशा सवार रहती है. हर मिलने वाले को कहते हैं- 'भैया, सब कुछ करना पर अपने बच्चों को विदेश मत भेजना..'

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी